मनुष्य स्वभावतः उत्सव प्रेमी है। उत्सव और पर्व जीवन में उत्साह और प्रेरणा जगाते हैं। जैन संस्कृति के पर्व सिर्फ आमोद-प्रमोद के लिए नहीं, किन्तु प्रमोद के साथ प्रबोध, उल्लास के साथ आत्मोल्लास जगाने की प्रेरणा देते हैं। यहाँ पर उन सांस्कृतिक पर्वों का एक संक्षिप्त-सार परिचय प्रस्तुत है।

☐ श्री गोटूलाल मांडावत

जैन संस्कृति के प्रमुख पर्वों का विवेचन

☐

आत्मा को पावन और पवित्र करे वह पर्व है। पर्व शब्द के दो अर्थ मुख्य हैं—उत्सव और ग्रन्थि। उत्सव शब्द कुछ संकुचित सा है। हर दिन ही कोई न कोई उत्सव हो सकता है, परन्तु जिस दिन विशिष्ट उत्सव आ जाए उसे पर्व कहते हैं।

पर्व लौकिक और लोकोत्तर दो प्रकार के होते हैं। सामान्य लौकिक पर्व हर सांसारिक व्यक्ति को आनन्द-दायक प्रतीत होते हैं जबकि लोकोत्तर पर्व हलुकर्मी जीवों को आकर्षक लगते हैं, क्योंकि उनके लिए उल्लास युक्त समय ही पर्व है।

लोकोत्तर पर्व दो प्रकार के होते हैं—नित्य पर्व और नैमित्तिक पर्व। अष्टमी, चतुर्दशी आदि तिथियों के पर्व नित्य पर्व कहलाते हैं, जिनमें खाने-पीने आदि प्रवृत्तियों में अन्य तिथियों से थोड़ा अन्तर रहता है, नैमित्तिक पर्व वर्ष में किसी समय विशेष पर ही आते हैं।

जैन संस्कृति में लोकोत्तर पर्वों का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है, किन्तु लगता ऐसा है कि प्रत्येक लोकोत्तर पर्व के साथ लौकिक व्यवहार जुड़ गया है क्योंकि स्वाभाविक है कि अपने उल्लास को प्रकट करने के लिए व्यक्ति नाना प्रकार की क्रियाएँ करते हैं। जैन संस्कृति के पर्वों पर स्पष्ट और विशेष झलक है जो तर्क और विज्ञान सम्मत है। वर्षारम्भ से वर्षान्त तक कई पर्व मनाए जाते हैं, जिन्हें देखकर लगता है कि कई पर्वों की नकल हम अन्य संस्कृतियों से करते हैं परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। इन पर्वों की ऐतिहासिकता जैन साहित्य से निर्विवाद प्रमाणित होती है।

अक्षय तृतीया

श्रमण हो जाने के पश्चात ऋषभदेव निर्मोह भाव से मौनव्रती होकर विचरते रहे। जनता को आहार विधि का ज्ञान न होने से वह श्रद्धा भक्ति सहित भावाभिभूत होकर भाँति-भाँति के पदार्थ प्रभु के सम्मुख लाते परन्तु श्रमणों के लिए अकल्पनीय होने से वे उसे ग्रहण नहीं कर सकते थे। करीब एक वर्ष की निरन्तर हो रही तपश्चर्या के बाद प्रभु हस्तिनापुर में पधारे। वहाँ बाहुबली के पौत्र एवं राजा सोमप्रभ के पुत्र श्रेयांस युवराज थे उन्होंने रात्रि में स्वप्न देखा कि सुमेरू पर्वत श्याम वर्ण का हो गया है, उसे मैंने अमृत सींचकर चमकाया है।[१]

उसी रात्रि सुबुद्धि सेठ को स्वप्न आया कि सूर्य की हजार किरणें जो अपने स्थान से विचलित हो रही थीं श्रेयांस ने उन्हें पुनः सूर्य में स्थापित कर दिया जिससे वह अधिक चमकने लगा।[२] महाराज सोमप्रभ ने स्वप्न देखा कि शत्रुओं से युद्ध करते हुए किसी बड़े सामन्त को श्रेयांस ने सहायता प्रदान की और श्रेयांस की सहायता से उसने शत्रु सैन्य को हरा दिया।[3]

प्रातः होने पर सभी स्वप्न के सम्बन्ध में चिन्तन-मनन करने लगे। चिन्तन का नवनीत निकला कि अवश्य ही श्रेयांस को विशिष्ट लाभ होने वाला है।[४]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचरण करते हुए उसी दिन ऋषभदेव हस्तिनापुर पधारे, नगरनिवासी आह्लादित हुए। भगवान परिभ्रमण करते हुए श्रेयांस के यहाँ पधारे। भगवान को देखकर श्रेयांस को जाति-स्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ। ऋषभदेव के दर्शन और चिन्तन से पूर्व भव की स्मृति उद्बुद्ध हुई[५] स्वप्न का सही तथ्य ज्ञात हुआ। उसके हृदय में प्रभु को निर्दोष आहार देने की भावना उठी। संयोग से उसी समय सेवकों द्वारा इक्षु रस के घड़े लाये गये थे। कुमार प्रभु के सामने पधारे और आहार लेने की प्रार्थना की। प्रभु ने हाथ फैला दिये। श्रेयांस ने भाव विभोर हो अंजली में रस उड़ेल दिया।[६] अच्छिद्र पाणी होने से एक बूंद रस भी नीचे नहीं गिरा। भगवान का यह वार्षिक तप अक्षय तृतीया को पूर्ण हुआ था। अहोदानं, की ध्वनि से आकाश गूंज उठा और देवों ने पंचदिव्य की वर्षा की। श्रेयांस इस युग के प्रथम भिक्षा दाता हुए तो प्रभु ने इस युग को प्रथम तप का पाठ पढ़ाया। प्रभु के पारणे का वैशाख शुक्ला तृतीया का वह दिन अक्षयकरणी के कारण संसार में अक्षय तृतीया या आखा तीज के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उस महान दान से तिथि भी अक्षय हो गई। त्रिषष्ठि० पु० च०, कल्पलता, कल्पद्रुम कलिका तथा समवायांग में इस तिथि पर पूर्ण सामग्री उपलब्ध है।

पर्युषण एवं संवत्सरी

जैन संस्कृति का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पर्व संवत्सरी है। आत्मा को कर्म से मुक्त करने के लिए इसकी उपासना की जाती है। पर्युषण अत्यन्त प्राचीन काल से चले आ रहे हैं। संवत्सरी पर्युषण की अन्तिम तिथि है।

ऐसा माना जाता है कि भगवान पार्श्वनाथ के काल में चातुर्मास की समाप्ति भाद्रपद शुक्ला पंचमी को हो जाती थी, इस दृष्टि से इसे वर्ष का अन्तिम दिन माना जाता और इसी के अनुसार संवत्सरिक प्रतिक्रमण करने से यह पर्व संवत्सरी के नाम से प्रचलित हुआ। प्रत्येक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी आरों का प्रारम्भ भी भाद्रपद शुक्ला पंचमी को होता है।[७]

कई आचार्य इसे शाश्वत पर्व मानते हैं, जम्बू द्वीप पन्नति में वर्णन आता है कि श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को उत्सर्पिणी काल का प्रथम व २१०० वर्ष बाद दूसरा आरा प्रारम्भ हुआ। पुष्कलावर्त्त महामेघ के सात अहोरात्रि बरसने से धरती की तपन शान्त हुई फिर सात अहोरात्रि तक 'क्षीर' महामेघ बरसा जिससे भूमि के अशुभ वर्ण नष्ट हो गये और वेशुभ रूप में परिवर्तित हुए। सात दिन तक आकाश के खुले रहने के बाद सात दिन 'घृत' नामक महामेघ ने बरस कर धरती में सरसता का संचार किया, फिर 'अमृत' मेघ की सात दिन तक वर्षा हुई जिसमें वनस्पति के अंकुर प्रस्फुरित हुए, फिर आकाश के सात दिन निर्मल रहने के बाद 'रस' नामक महामेघ ने बरस कर वनस्पति में ५ प्रकार के रसों का संचार किया इस प्रकार वनस्पति मानव के भोग योग्य बनी। आरे के प्रारम्भ के ५०वें दिन बिल-गत मानव जब बाहर निकले तो धरती को हरी भरी देखकर उन्होंने समवेत स्वर में घोषणा की कि 'हे देवानुप्रिय! आज से हममें से जो कोई अशुभ पुद्गलों का आहार करेगा उसकी छाया से भी हम दूर रहेंगे।[८] इसके अनुसार मानवों में स्वतः सत्प्रेरणा का यह पर्व अनादि रूप से चला आ रहा है।

श्रमण भगवान महावीर ने वर्षावास के एक मास और बीस रात्रि बीतने पर तथा सत्तर रात्रि दिन शेष रहने पर पर्युषण पर्वाराधना की।[९]

संवत्सरी शब्द मूल आगमों में कहीं-कहीं ही मिलता है। कुछ दिनों पूर्व आगम अनुयोग प्रवर्तक पं० मुनि श्री कन्हैयालाल जी म० सा० से इसका कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि 'पज्जुसणा' शब्द का अर्थ संवत्सरी में निहित है।

पर्युषण पर्व के दिनों में चारों जाति के देवता समारोहपूर्वक अठाई महोत्सव करते हैं।[१०] पर्युषण पर्वाराधना का उल्लेख कई आगमों में प्राप्त होता है, अधिकांश में आठ दिनों का स्पष्ट उल्लेख नहीं है संभव है कि भावनाओं को उच्चतम बनाने के लिए आठ दिन नियत किये गये हों। संवत्सरी को चूंकि जैन मान्यतानुसार वर्ष का अन्तिम दिन मानते है। इसलिए इसी दिन आलोचना पाठ तथा पाटावली पढ़ने सुनने की परम्परा है। स्थानकवासी समाज में अन्तकृत सूत्र तथा मूर्तिपूजक सम्प्रदाय में कल्प सूत्र वाचन की परम्परा है। यों संवत्सरी भाद्रपद शुक्ला चौथ या पंचमी को कालगणना के अनुसार आती है, परन्तु ऐसा वर्णन भी मिलता है कि संवत्सरी की आराधना कालकाचार्य द्वितीय से पहले तक कालगणना के अनुसार भाद्रपद शुक्ला चौथ या पंचमी को ही की जाती थी।

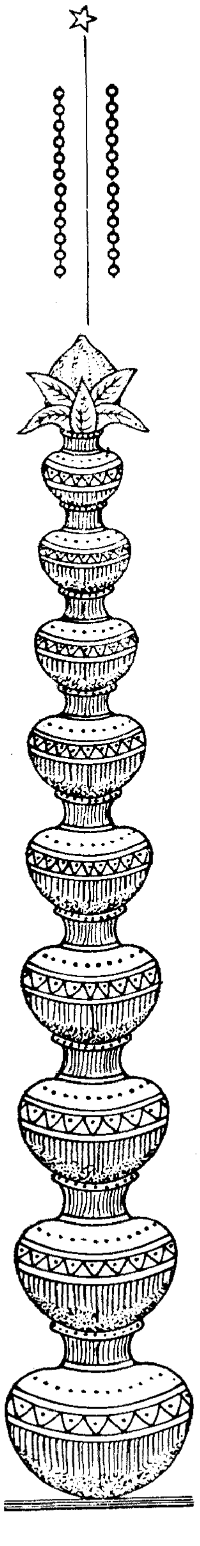

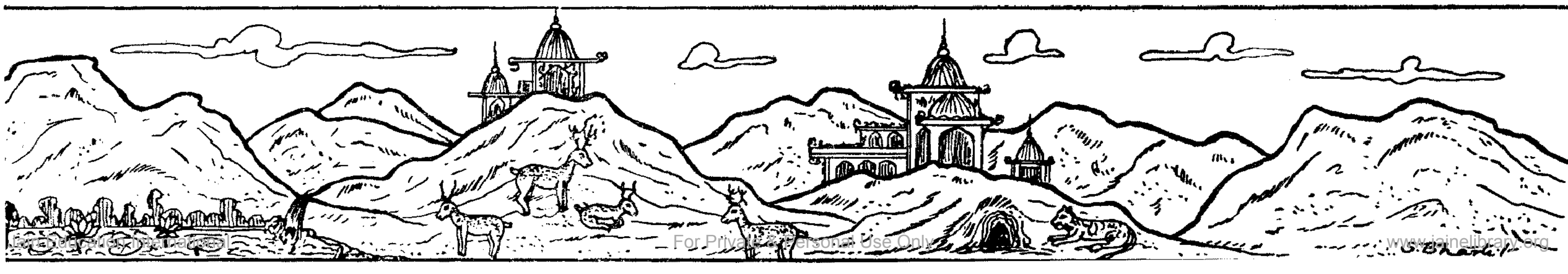

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धारा नगरी के कुमार कालक और कुमारी सरस्वती ने गुणाकर मुनि के पास संयम स्वीकार किया। वीर नि० सं० ४५३ में कालक को आचार्य पद प्रदान किया गया। वीर नि० सं० ४७० से ४७२ के बीच इनका चातुर्मास मडौंच था। वहाँ से विशेष परिस्थितिवश चातुर्मास अवधि में ही आचार्य कालक ने प्रतिष्ठानपुर की ओर विहार कर दिया तथा वहाँ के श्रमण संघ को सन्देश पहुँचाया कि वे पर्युषण के पूर्व प्रतिष्ठानपुर पहुँच रहे हैं, अतः पर्युषण सम्बन्धी कार्य उनके वहाँ पहुँचने के पश्चात् निश्चित किया जाय। वहाँ पहुँच कर आचार्य ने पंचमी को संवत्सरी (सामूहिक पर्युषण) मनाने की सूचना दी, परन्तु वहाँ के जैन धर्मावलम्बी राजा सातवाहन को इन्द्र महोत्सव में भाग लेना था, इसलिए उसने छठ या चौथ को पर्युषण मनाने का निवेदन किया। कालकाचार्य ने चौथ को संवत्सरी मनाने की बात स्वीकार करली। इस प्रकार कालकाचार्य ने देशकाल को देखते हुए भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी को पर्वाराधना किया।[12]

दशाश्रुत स्कन्ध चूर्णि तथा जिन विजय जी द्वारा सम्पादित जैन साहित्य के अनुसार कालकाचार्य का समय वीर निर्वाण स० ९९३ माना जाता है, काल गणना के अनुसार इस समय को सही मानने की मान्यता कम है। इस सम्बन्ध में आचार्य श्री हस्तीमल जी म० सा० द्वारा दिया गया समय वीर निर्वाण संवत ४७२ सही माना जाता है। कई प्रमाणों से आचार्य श्री ने जैनधर्म के मौलिक इतिहास में इसका विशद विवेचन किया हैं।

चतुर्थी की इस परम्परा को स्थायी महत्त्व प्राप्त नहीं हो सका। वर्तमान में यदि कभी चतुर्थी को संवत्सरी पर्व की आराधना की जाती है तो इसका कारण यह नहीं कि कालकाचार्य की परम्परा का पालन हो रहा है, वस्तु स्थिति यह है कि वास्तव में संवत्सरी पंचमी को ही मनाई जाती है, कभी-कभी कालगणना के कारण ही पर्वाराधना चतुर्थी को की जाती है।

दिगम्बर जैन अपना पर्युषण पर्व महोत्सव भाद्रपद शुक्ला से पूर्णिमा तक मनाते हैं वे इस पर्व को पर्युषण न कहकर दश लक्षण पर्व कहते हैं। संभव है मत विभिन्नता के कारण पृथक समय अपनी पृथकता और विशेषता तथा विभिन्नता को बनाए रखते हुए उन्होंने पर्युषण के बजाय दस लक्षण पर्व प्रारम्भ किया हो। दस लक्षण पर्व की क्रिया आदि की सारी भावना पर्युषण से मिलती-जुलती है। दस लक्षण धर्म का उल्लेख आचार्य उमास्वाती कृत तत्त्वार्थ सूत्र के नौवे अध्याय में इस प्रकार है।

उत्तम क्षमामार्दवार्जव शोच सत्य संयमतपस्त्यागाकिञ्चन्य ब्रह्मचर्याणि धर्मः।

क्षमा, नम्रता, सरलता, पवित्रता, सत्य, संयम, तप, त्याग आकिंचन्य और (निष्परिग्रहता) ब्रह्मचर्य ये दस धर्म हैं। जैन समाज के सभी घटक निर्विवाद रूप से तत्त्वार्थ सूत्र की मान्यता को स्वीकार करते हैं। यह पर्व आत्मावलोकन समालोचना का भी पर्व है। कृत कर्मों का लेखा-जोखा कर पापों को वोसराया जाता है। पर्युषण के शाब्दिक विवेचन से स्पष्ट होता अर्थ इस प्रकार है।

"परिसमन्तात् उष्यन्ते दह्यन्ते कर्माणि यस्मिन् पर्यूषणम्।" पर्युषण का दूसरा अर्थ आत्मा में निवास करना होता है और आध्यात्मिक अर्थ में आत्मा में निवास करना सार्थक है।

पर्युषण का नामोल्लेख निशीथ सूत्र में इस प्रकार पाया जाता है।

"साधु प्रमादवश पर्युषण आराधना न करे तो दोष लगता है।[12] केश लोच पर्युषण पर करना अत्यन्त आवश्यक है, गौ के रोम जितने बाल भी न रखे[13] साधु पर्युषण में किंचित भी आहार न करे।"[14]

कल्प सूत्र में पर्युषण के लिए एक विशेष कल्प है जिनमें विस्तार से विवेचना की गई है "संवत्सरी के दिन केशलोच नहीं करने वाले साधु को संघ में रहने योग्य नहीं माना है।"[15]

पर्युषण क्षमा का अनुपम पर्व है, महावीर के शासन-काल में उदायन द्वारा अपराधी चण्डप्रद्योतन को क्षमा कर गले मिलने का उदाहरण कितना सुन्दर लगता है, उसी परम्परा का पालन आज भी जैन-जैनेतर समाज द्वारा किया जाता रहा है। निशीथ सूत्र के कथाकार ने यह लिखते हुए एक कथा का समापन किया है कि 'जब अज्ञान और असंयत ग्रामीणों ने भी क्षमायाचना की और कुंभार ने क्षमा प्रदान की तो संयमी साधुओं का तो कहना ही क्या है? जो भी अपराध किया हो उस सब को पर्युषणा के समय क्षमा लेना चाहिये। इससे संयम की आराधना होती है।[16] उक्त सभी प्रमाणों से ज्ञात होता है कि पर्युषण महापर्व जैन संस्कृति का अत्यन्त प्राचीन पर्व है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्वाण पर्व—दीपावली

यों पंचकल्याणकों में निर्वाण पर्व का महत्त्वपूर्ण स्थान है । सभी तीर्थंकरों के निर्वाण महोत्सव तप त्यागादि की आराधना से मनाये जाते हैं, पर विशेष उल्लास और उत्साह से चरम तीर्थंकर महावीर का निर्वाण पर्व मनाया जाता है । भारत में दीपावली कई संस्कृतियों की ऐतिहासिक विरासत की देन है । जैन दृष्टि से इस पर्व का शुभारम्भ भगवान महावीर की देह-मुक्ति से हुआ है ।

राजगृही का ४१वां वर्षावास कर तीर्थंकर महावीर मल्लों की राजधानी अपापापुरी (पावापुरी) में राजा हस्तिपाल की लेखशाला में पधारे । छट्ठतप युक्त प्रभु ने अपना निर्वाण समीप देखकर पंचावन अध्ययन पुण्यफल विपाक के और पंचावन अध्ययन पापफल विपाक के कहे[१७], फिर छत्तीस अध्ययनों का अमृतमय उपदेश 'उत्तराध्यन' प्रदान किया[१८] निर्वाण समय समीप जान तथा गौतम के सर्वज्ञत्व में स्नेह को बाधक जान प्रभु ने गौतम को समीप के गाँव में देवशर्मा को प्रतिबोध देने भेजा[१९], विनयावनत गौतम प्रभु को वन्दना कर प्रस्थित हुए । निर्वाण के समय प्रभु से इन्द्र ने निवेदन किया कि भस्मग्रह संक्रमण तक आयुष्य को रोक लें, तो प्रभु ने कहा कि आयु को बढ़ाने-घटाने की सामर्थ्य किसी में नहीं है । कार्तिक कृष्णा अमावस्या की रात्रि के अन्तिम प्रहर में प्रभु संसार त्याग कर चले गये, सभी बन्धन नष्ट हो गये, सब दुःखों का अन्त कर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए ।[२०]

निर्वाण हुआ जान स्वर्ग से देवी, देवता शक्र और इन्द्र वहाँ आए । सभी देवों ने अपनी-अपनी सामर्थ्य और गुणों के अनुरूप अन्तिम क्रिया में योग दिया । रज्जुग सभा में काशी कौशल के नौ लिच्छवी तथा नौ मल्ल इस तरह अठारह गण राजा भी उपस्थित थे । अठारह ही राजाओं ने उपवास युक्त पौषध किया हुआ था । अमावस्या की घोरकाली रात्रि थी अतः उन्होंने निश्चय किया कि प्रभु के निर्वाणान्तर भाव उद्योत के उठ जाने से महावीर के ज्ञान के प्रतीक रूप में स्मरणार्थ द्रव्य प्रकाश करेंगे ।[२१]

जिस रात्रि में श्रमण भगवान महावीर काल धर्म को प्राप्त हुए, उस रात्रि में बहुत-सी देव-देवियाँ ऊपर-नीचे आ-जा रही थीं जिससे वह रात्रि खूब उद्योतमयी हो गई थी ।[२२]

उस दिन देवताओं ने दुर्लभ रत्नों से द्रव्य प्रकाश किया था, मनुष्यों ने भी दीप संजोए तब से दीपावली पर्व प्रारम्भ हुआ ।

हरिवंश पुराण में आचार्य जिनसेन ने दीपावली के प्रारम्भ का बड़ा भावमय वर्णन दिया है—

ज्वलत्प्रदीपालिकया प्रवृद्धया, सुरासुरैः दीपितया प्रदीप्तया ।
तदास्म पावानगरी समन्ततः प्रदीपिता काशतला प्रकाशते ।।
ततस्तु लोकः प्रतिवर्षमादरात् प्रसिद्ध दीपावलीकयात्र भारते ।
समुद्यतः पूजयति जिनेश्वरं जिनेन्द्रनिर्वाण विभूति-भक्ति भाग् ।।

—प्रस्तुत श्लोक में दीपावली का समग्र दृश्य सार संक्षेप रूप से वर्णन किया गया है । ऐसा ही वर्णन त्रिषष्ठि-शलाका पुरुष चरित्र में प्राप्त होता है ।

परिनिर्वाण वि० पू० ४७१ तथा ई० पू० ५२७ माना जाता है । महावीर निर्वाण के १६६९ वर्ष बाद कुमारपाल का जन्म हुआ था, ई० ११४२ में । अतः महावीर का निर्वाण काल १६६९—११४२=५२७ ई० पू० है । कुछ विद्वान् ४६८ और ४८२ तथा ५२७ और ५४६ ई०पू० के बीच निर्वाणकाल मानते हैं किन्तु परम्परानुसार महावीर का निर्वाण ५२७ ई० पू० माना जाता है[२३] "प्रोफेसर परशुराम कृष्ण गोडे, ओरिएन्ट रिसर्च, भगवान महावीर का निर्वाण दीपावली के रूप में होना स्वीकार करते हैं, महावीर का सदैव के लिए शरीर का त्याग होने से इसे कालरात्रि कहते हैं । इस उपलक्ष में तत्कालीन नरेश और श्रेष्ठीमंडल ने नया संवत प्रारम्भ किया और पुण्य-पाप के लेखे-जोखे की तरह हानि-लाभ का लेखा-जोखा रखा जाने लगा । दिगम्बर जैनाचार्य जिनसेन ने हरिवंश पुराण में ७८३ ई० में, सर्ग ६६, श्लोक १५, १६''''''२० में, उत्तर पुराण (गुणभद्र) के १६वें सर्ग में, सोमदेव सूरि के यशस्तिलक चम्पू में, अब्दुल रहमान ने (११०० ई० में) संदेश रसिक में, अकबर ने नौवें रत्न अबुल फजल ने आइने अकबरी में (१५९०),

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा लोकमान्य तिलक व रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी वीर निर्वाण के उपलक्ष में दीपावली मनाना स्वीकार किया है। मार्ग स्टीवेन्सन ने इन्साइक्लोपीडिया आफ रीलिजन एण्ड इथिक्स भाग ५, पृष्ठ ८७५ से ८७८ में दीपावली का प्रारम्भ वीर निर्वाण से बताया है।"[२४]

यों २५०० वर्षों की लम्बी अवधि में इस पर्व का सम्बन्ध कई महापुरुषों से हो गया है। मान्यता है कि दयानन्द सरस्वती का स्वर्गवास, स्वामी रामतीर्थ की समाधिमरण इसी दिन हुआ था। प्राप्त मान्यताओं में सबसे प्राचीन मान्यता भगवान महावीर के निर्वाण प्राप्त करने की है।

प्रभु महावीर पर गणधर गौतम की अनन्य श्रद्धा थी। महावीर उसे जानते थे, इसलिए उन्होंने अपने निर्वाण से पूर्व गौतम को देवशर्मा के यहाँ प्रतिबोध देने भेज दिया था। वहीं गौतम को प्रभु के निर्वाण के समाचार मिले जिससे वे द्रवित हो गये। वे स्वयं को हतभागी समझने लगे। भावनाओं पर बुद्धि ने विजय प्राप्त की और उसी रात्रि में गौतम ने भी केवलज्ञान प्राप्त किया।[२५] कार्तिक अमावस्या की मध्य रात्रि में भगवान महावीर का परिनिर्वाण हुआ और अन्तिम रात्रि में गौतम गणधर ने केवल ज्ञान, केवल दर्शन प्राप्त किया इसी कारण कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा गौतम प्रतिपदा के नाम से विश्रुत है। इसी दिन अरुणोदय के प्रारम्भ से ही अभिनव वर्ष का आरम्भ होता है।[२६] भगवान के निर्वाण का दुःखद वृत्तान्त सुनकर भगवान के ज्येष्ठ भ्राता महाराज नन्दनीवर्धन शोक विह्वल हो गये। उनके नेत्रों से आँसुओं की वेगवती धारा प्रवाहित होने लगी, बहिन सुदर्शना ने उनको अपने यहाँ बुलाया और सांत्वना दी। तभी से भैया दूज के रूप में यह पर्व स्मरण किया जाता है।[२७]

रक्षाबन्धन

कुरु जांगल देश में हस्तिनापुर नामक नगर था। वहाँ के महापद्म राजा के दो पुत्र पद्मराज और विष्णु कुमार थे, छोटे पुत्र विष्णुकुमार ने पिता के साथ ही संयम स्वीकार कर लिया।

उस समय उज्जयिनी में श्रीवर्मा राजा राज्य करते थे उनके बलि, नमुचि, वृहस्पति और प्रह्लाद चार मन्त्री थे। एक बार अकम्पनाचार्य जैन मुनि ७०० शिष्यों के साथ वहाँ आए। चारों मंत्री जैन मत के कट्टर आलोचक थे इसलिए आचार्य ने उनसे विवाद करने के लिए सभी मुनियों को मना कर दिया था, एक मुनि नगर में थे। उन्हें आचार्य की आज्ञा ज्ञात नहीं थी इसलिए मार्ग में आए चारों मन्त्रियों से श्रुत सागर मुनि ने शास्त्रार्थ किया। चारों को पराजित कर वे गुरु के पास गये। गुरु ने भावी अनर्थ को जान श्रुतसागर मुनि को उसी स्थान पर निशंक ध्यान लगाने का आदेश दिया। मुनि गये और ध्यान में लीन हो गये। चारों मंत्री रात्रि को वहाँ गये, उन्होंने तलवार से मुनि को मारना चाहा पर, वन रक्षक देव ने उनको अपने स्थान पर यथास्थिति से कील दिया। अच्छी संख्या में लोगों के इकट्ठे होने पर वन रक्षक देव ने सारा वृत्तान्त सुनाया जिसे सुनकर राजा ने चारों को देश निकाला दिया। अपनी प्रतिभा का उपयोग करते हुए वे हस्तिनापुर पहुँचे और मन्त्री पद प्राप्त किया। एक बार मन्त्रियों ने राजा से किसी विशेष अवसर पर प्रसन्न कर इच्छानुसार वर लेने को राजी कर लिया। संयोग से ७०० मुनियों का यह संघ विचरते हुए हस्तिनापुर पहुँचा। मन्त्री बलि ने, अपने अपमान का बदला लेने का अच्छा अवसर जान राजा से ७ दिन के लिए राज्य ले लिया। उसने मुनियों के निवास-स्थान पर कांटेदार बाड़ बनाकर उनके विनाश के लिए नरमेध यज्ञ की रचना कर दी। इस प्रलयंकारी घटना से लोग दुःखी हो गये, परन्तु वे राज्य शक्ति के आगे कुछ करने में असमर्थ थे।

उस समय मिथिलापुर नगर के वन में सागर चन्द्रमुनि को अवधिज्ञान से मुनियों पर आए इस मरणान्तिक उपसर्ग का ध्यान हुआ और वे हा ! हा ! महाकष्ट ! इस प्रकार बोल उठे। गुरुदेव ने स्थिति की गम्भीरता को समझा और उन्होंने अपने शिष्य पुष्पदत्त को आकाशगामी विद्या से धरणी भूषण पर्वत पर विष्णुकुमार मुनि के पास विपत्ति का वर्णन करने के लिए भेजा।

वैक्रिय ऋद्धिधारी मुनि विष्णुकुमार तुरन्त हस्तिनापुर पहुँचे और पद्मराज के महलों में गये, बातचीत की किन्तु पद्मराज कुछ भी कर पाने में असमर्थ थे क्योंकि वे वचनबद्ध बने हुए थे।

निदान उन्होंने ५२ अंगुल का शरीर धारण किया और नरमेध यज्ञ के स्थान पर बलि के पास गये, बलि ने उनका उचित सत्कार किया और दानादि से उनका सम्मान करना चाहा। विष्णुकुमार ने तीन पैर जमीन की मांग की,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मांग स्वीकार होने पर उन्होंने पहली डग सुमेरू और दूसरी मानुषोत्तर पर्वत पर रखी। तीसरी डग के लिए उन्होंने बलि के कहने से उसकी पीठ पर पैर रखा तो उसका शरीर थर-थर काँपने लगा, आखिर मुनियों के कहने से उसे मुक्त किया गया। उस दिन श्रवण नक्षत्र व श्रावण सुद १५ का दिन था, इसी दिन विष्णुकुमार मुनि द्वारा ७०० मुनियों की रक्षा की गई थी, इससे यह दिन पवित्र माना जाता है। इस दिन की स्मृति बनाए रखने के लिए परस्पर सबने प्रेम से बड़े भारी उत्सव के साथ हाथ में सूत का डोरा चिन्ह स्वरूप बांधा, तभी से यह श्रावण सुद १५ का दिन रक्षाबन्धन के नाम से जाना जाता है। मुनियों को उपसर्ग से मुक्त हुआ जानकर ही श्रावकों ने भी भोजन करने की इच्छा की और उन्होंने घर-घर खीर तथा नानाविध प्रकार की मिठाइयाँ बनाईं, परम्परागत रूप से डोरा बाँधने और मिठाइयाँ बनाने की प्रथाएँ चली आ रही हैं।[२८]

विशेष—प्रस्तुत कथा का साम्य कई पुस्तकों में देखने को मिला किन्तु जैन मान्यतानुसार यह पर्व कब से प्रारम्भ हुआ, इसका कोई प्रमाण मेरे देखने में नहीं आया, उचित प्रमाण के अभाव में समयोल्लेख नहीं किया है।

पंचकल्याणक

जैन संस्कृति के पर्वों में पंचकल्याणक का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। तीर्थंकरों की आत्मा देवलोक से च्यवकर माता के गर्भ में प्रवेश करती है, जन्म लेती है, तीर्थंकर दीक्षा ग्रहण करते हैं, कैवल्य प्राप्त होता है तथा मोक्ष में पधारते हैं तब मान्यता है कि देवता हर्षोल्लास से अष्टान्हिका महोत्सव का आयोजन करते हैं, उन तिथियों के स्मृति स्वरूप आज भी पंचकल्याणक महोत्सव मनाये जाते हैं। विशेष कर प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों के ये महोत्सव मूर्तिपूजक समाज अत्यन्त हर्ष और उल्लास के साथ सम्पन्न करता है। इन तिथियों पर त्याग-तपस्या का भी अपूर्व क्रम चलता है।

पंचकल्याणक की तिथियों का वर्णन किसी एक ही ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होता। कल्पसूत्र, त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र, महावीर चरियं, आवश्यकनिर्युक्ति, महापुराण, आवश्यक चूर्णि और कल्प सुबोधिका टीका में कहीं-कहीं तीर्थंकरों के इन पंचकल्याणक की तिथियाँ प्राप्त होती हैं। शोध की दृष्टि से देखा जाए तो इन तिथियों पर कई पन्ने लिखे जा सकते हैं, इनका संक्षिप्त रूप अगले पृष्ठ पर है—

आयम्बिल ओली पर्व—

उज्जयिनी नगर में प्रजापाल राजा राज्य करते थे, उनके सौभाग्य सुन्दरी और रूप सुन्दरी दो रानियाँ थीं। जिनके क्रमशः सुर-सुन्दरी और मैना सुन्दरी नाम की पुत्रियाँ थीं।

ज्ञानाभ्यास की समाप्ति के बाद एक बार दोनों राजकुमारियाँ अपने कलाचार्यों के साथ राज्य सभा में उपस्थित हुईं राजा ने दोनों राजकुमारियों से प्रश्न पूछे। सुरसुन्दरी और मैनासुन्दरी ने उनके यथोचित उत्तर दिये। राजा ने प्रसन्न होकर उनसे वर माँगने का कहा, तब मैना सुन्दरी ने कर्म की प्रमुखता बतलाते हुए राजा की कृपा को गौण कर दिया। राजा मैनासुन्दरी पर अत्यन्त कुपित हुआ।

श्रीपाल की अल्पायु अवस्था में उसके पिता चम्पा नरेश सिंहरथ की मृत्यु हो गई थी। प्राण बचाने के लिए रानी कमल प्रभा श्रीपाल को लेकर वन में रवाना हो गई, वहाँ प्राण रक्षा के निमित्त उनको सात सौ कोढ़ियों के एक दल में सम्मिलित होना पड़ा। संयोग से कोढ़ियों का यह दल उन्हीं दिनों उज्जयिनी में आया हुआ था। राजा ने कोढ़ियों के राजा श्रीपाल (उम्बर राजा) से मैना सुन्दरी का विवाह कर दिया।

विवाह के अनन्तर दोनों को एक जैन मुनि के दर्शन प्राप्त हुए, मैनासुन्दरी ने गुरुदेव से कुष्ठरोग से मुक्ति पाने का उपाय पूछा, गुरुदेव ने कहा—मयणा! हम साधु हैं, निर्ग्रन्थ मार्ग की उपासना हमारा कर्त्तव्य है, यंत्र, मंत्र और तन्त्र बताना हमारे लिए निषिद्ध है, हमारी मान्यता है कि अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, दर्शन, ज्ञान चारित्र और तप इन नौ पदों से बढ़कर कोई तत्त्व नहीं हैं। सिद्ध पद को पाने वालों की सिद्धि में इन नव पदों की आराधना अवश्य होती है। शान्त दान्त जितेन्द्रिय और निरारंभ होकर जो इनको आराधना करता है वह सौख्य प्राप्त करता है।"

शुक्ला सप्तमी से नव दिन तक आयम्बिल तप करके नवपद का ध्यान करे, इसी तरह चैत्र में भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकर संख्या	गर्भ कल्याणक	जन्म कल्याणक	दीक्षा कल्याणक	कैवल्य कल्याणक	निर्वाण कल्याणक
१	आ० कृ० २	चै० कृ० ६	चै० कृ० ६	फा० कृ० ११	मा० कृ० १४
२	ज्ये० कृ० ३०	पौ० शु० १०	पौ० शु० ६	पौ० शु० ११	चै० शु० ५
३	फा० शु० ८	मार्ग शु० १५	मार्ग शु० १५	का० कृ० ४	चै० शु० ६
४	वै० शु० ६	पौ० शु० १२	पौ० शु० १२	पौ० शु० १४	चै० शु० ६
५	श्रा० शु० २	वै० कृ० १०	वै० शु० ६	चै० शु० ११	चै० शु० ११
६	माघ कृ० ६	का० कृ० १३	मग० कृ० १०	चै० शु० १५	फा० कृ० ४
७	भाद्र शु० ६	ज्ये० शु० १२	ज्ये० शु० १२	फा० कृ० ६	फा० कृ० ७
८	चै० कृ० ५	पौ० कृ० ११	पौ० कृ० ११	फा० कृ० ७	फा० कृ० ८
९	फा० कृ० ६	मग० शु० ६	मग० शु० १	का० शु० २	भाद्र० शु० ८
१०	चै० कृ० ८	पौ० कृ० १२	पौ० कृ० १२	पौ० कृ० १४	आश्वि० शु० ८
११	ज्ये० कृ० ६	फा० कृ० ११	फा० शु० ११	माघ० कृ० ३०	श्रा० शु० १५
१२	आषा० कृ० ६	फा० कृ० १४	फा० कृ० १४	माघ० शु० २	भाद्र० शु० १४
१३	ज्ये० कृ० १०	पौ० शु० ४	पौ० शु० ४	माघ० शु० ६	आषा० कृ० ८
१४	कार्तिक कृ० १	ज्ये० कृ० १२	ज्ये० कृ० १२	चै० कृ० ३०	चै० कृ० ३०
१५	वै० शु० १३	पौ० शु० १३	पौ० शु० १३	पौ० शु० १५	ज्ये० शु० ४
१६	भाद्र० कृ० ७	ज्ये० कृ० १४	ज्ये० कृ० १४	पौ० शु० ११	ज्ये० कृ० १४
१७	श्रा० कृ० १०	वै० शु० १	वै० शु० १	चै० शु० ३	वै० शु० १
१८	फा० शु० २	मग० शु० १४	मग० शु० १४	का० शु० १२	चै० कृ० ३०
१९	चै० शु० १	मग० शु० ११	मग० शु० ११	मग० शु० ११	फा० शु० ५
२०	श्रा० कृ० २	वै० कृ० १०	वै० कृ० १०	वै० कृ० ६	फा० कृ० १२
२१	आसो० कृ० २	आषा० कृ० १०	आषा० कृ० १०	मग० शु० ११	वै० कृ० १४
२२	का० शु० ६	श्रा० कृ० ६	श्रा० कृ० ६	आसो० कृ० १	आषा० शु० ७
२३	वै० कृ० ३	पौ० कृ० १०	पौ० कृ० १०	चै० कृ० ४	श्रा० शु० ७
२४	आषा० शु० ६	चैत्र शु० १३	चै० शु० १३	वै० शु० ७	का० कृ० ३०

यह सारणी 'जैन व्रत विधान संग्रह' लेखक पं० बारेलाल जैन, टीकमगढ़, पुस्तक से उद्धृत की गई है।

नोट—इस सारणी से कुछ प्रचलित मान्यताओं में अन्तर है। —प्र० सं०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नौ दिन तक आयम्बिल करे । इस प्रकार नौ ओली होने पर इक्यासी आयम्बिल होते हैं और यह तप पूरा होता है इस तप की आराधना से दुष्ट कुष्ठ ज्वर क्षय भगंदरदि रोग नष्ट होते हैं, उपासक सब प्रकार से सुखी होता है ।

श्रीपाल ने अवसरानुसार प्रथम ओली की जिसके परिणामस्वरूप उसका कुष्ठ रोग समाप्त हो गया तथा उसने सातसौ कोढ़ियों का यह रोग समाप्त करने में भी योग दिया, श्रीपाल के अब तक के मंद भाग्य भी खुलने लगे और वह असीम ऋद्धि-सिद्धि का स्वामी बना । यह पर्व सिद्धचक्र के नाम से भी जाना जाता है । नवपद पर्व भी आयम्बिल ओली पर्व का ही नाम है ।[२६]

ज्ञानपंचमी—कार्तिक शुक्ला पंचमी, ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी और श्रावण शुक्ला पंचमी को अलग-अलग मान्यतानुसार इस पर्व की आराधना की जाती है । मान्यता है कि इन दिनों ज्ञान की आराधना से विशिष्ट फल प्राप्त होते हैं । ज्ञानावरणीय कर्म क्षय होकर ज्ञान योग्य सामग्री सुलभ बनती है, इस पर्व से सम्बन्धित कथा का सार यही है कि ज्ञान, ज्ञानी और ज्ञान के उपकरणों की आशातना, अवज्ञा, विराधना और तिरस्कार से जीव को दारुण दुःखदायी यातनाएँ प्राप्त होती हैं तथा ज्ञान की आराधना करने से जीव सम्यक् सुख प्राप्त करता है । ज्ञान की आराधना के लिए किसी दिन विशेष को नियत करने की मान्यता आज का वातावरण स्वीकार नहीं करता है क्योंकि प्रत्येक समय ज्ञानाराधना की जा सकती है तथा ज्ञानाराधना भी की जानी चाहिए ।

अन्य पर्व—जैन संस्कृति के कुछ प्रमुख पर्वों का विवेचन प्रस्तुत निबन्ध में किया गया है । पर्वों से सम्बन्धित साहित्य को देखने पर मुझे अन्य कई और पर्वों से सम्बन्धित सामग्री भी प्राप्त हुई प्रत्येक पर्व की आराधना के महत्त्व को प्रदर्शित करने के लिए उसके साथ कथाएँ भी जुड़ी हुई हैं, उन कथाओं का उद्‌भव कब हुआ इसके बारे में समय निर्धारण ज्ञात नहीं किया जा सका, अत: उनके नामोल्लेख कर देना ही पर्याप्त समझता हूँ, इन पर्वों के साथ फल प्राप्ती के लिए व्रत आराधना की जाती है तथा ये पूरे वर्ष चलते रहने वाले सामान्य पर्व हैं अत: इन्हें नित्य पर्व की संज्ञा देना उचित लगता है । मूर्तिपूजक समाज के साहित्य में इन पर्वों के बारे में उल्लेख मिलता है । अधिकांश पर्व तीर्थंकरों के कल्याणकों की तिथियों पर ही आते हैं—कुछ पर्वों के नाम निम्नांकित हैं—अष्टान्हिका, रत्नत्रय, लाब्धिविधान, आदित्यवार, कोकिलापंचमी, पुष्पाञ्जली, मौन एकादशी, गरुड़पंचमी, मोक्ष सप्तमी, श्रावण द्वादशी, मेघमाला, त्रिलोक तीज, आकाश पंचमी, चन्दन षष्ठी, सुगन्ध दशमी, अनन्त चतुर्दशी, रोहिणी, नागपंचमी, मेरुत्रयोदशी आदि ।

टीकमगढ़ से प्रकाशित 'जैन व्रत विधान संग्रह' पुस्तक में ही १६४ पर्वों का उल्लेख है । विस्तार भय से उनका नामोल्लेख भी संभव नहीं है । प्रत्येक पंचांग में सम्बन्धित तिथि के सामने पर्वों का उल्लेख रहता है, धारणा है कि ये सामान्य पर्व केवल लौकिक लाभों को प्राप्त करने के लिए ही आचार्यों द्वारा नियत किये गये हों, इनसे जुड़ी कथाएँ केवल लौकिक लाभ का प्रदर्शन ही करती हैं जबकि अक्षय तृतीय, संवत्सरी, दीपमालिका आदि विशुद्ध रूप से लोकोत्तर पर्व हैं उनके बारे में जैन ही नहीं जैनेतर साहित्य में भी सामग्री प्राप्त होती है ।

प्रस्तुत निबन्ध में पर्वों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का विवेचन ही प्रस्तुत किया गया है, इन पर्वों की आराधना एक अलग से पूर्ण विषय है, जिस पर विद्वानों को लिखने की आवश्यकता है । पर्वों की सम्यक् आराधना करने पर लोकोत्तर-पथ प्रशस्त बनता है तथा आत्मा सिद्ध स्थान के निकट पहुँचती है ।

---

१ आवश्यक चूर्णि, पृ० १६२-१६३, आव. निर्युक्ति, त्रिषष्ठि श० पु० च०
२ आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, पृ० १४५।१, त्रि० श० पु० च० आवश्यक चूर्णि १३३
३ आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, आव० मल० वृत्ति, त्रि० श० पु० च०
४ आवश्यक मल० वृ०, पृ० २१८।१
५ महापुराण जिन० ७८।२०।४५२
६ समवायांग सूत्र १५६।१५, १६, १७, आव० नि० गाथा ३४४, ३४५, त्रिषष्ठि० आदि
७ पर्युषण पर्व : आर्य जैन, सुखमुनि
८ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्ष २, काल अधिकार, पृ० ११४-११७

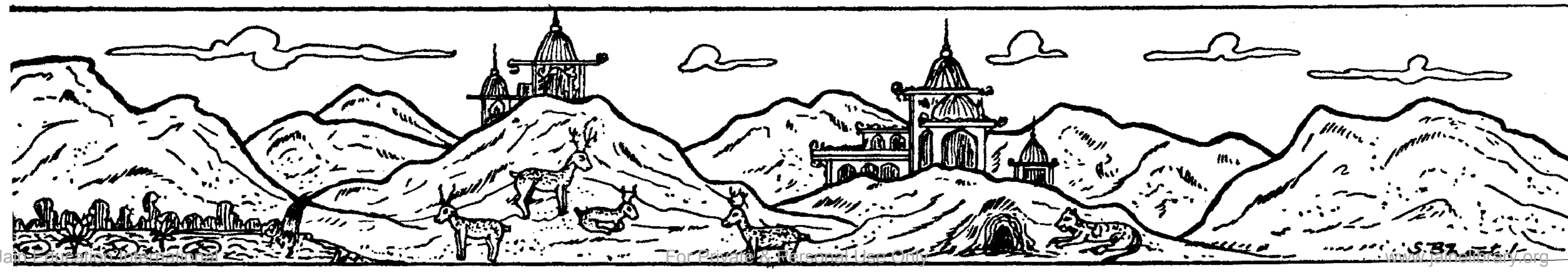

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९ समणे भगवं महावीरे वासाणं सवीसई राएमासे वइक्कंते सत्तरिएहिं राइंदिहेहिं सेसेहिं वासावासे पज्जोसहेई
(क) समवायांग सूत्र १७०वां समवाय
(ख) कल्पसूत्र समाचारी
१० तत्थणं बहवे भवणवई···संवच्छरीयंसु विहरंति, —जीवाभिगम (संवत्सरी पर्व : आत्मारामजी म. सा.)
११ निशीथ चूर्णि उ. १०, भाग ३, पृ० १३१
—करणिया चउत्थी अज्ज कालगायरिएण पवत्तिया।
१२ पज्जोसवणाए न पज्जोसवेइ, —निशीथ सूत्र उद्दे० १०
१३ पज्जोसवणाए गोलोमाइंपि बालाईं उवाइणावेई, —निशीथ ४४
१४ पज्जोसवणाए इत्तिरियंपि आहारं आहारेई, —निशीथ उद्दे १०-४५
१५ जेणं निग्गंथो निग्गन्थी वा परं पज्जोवणासी अहिगरणं वमई सेणं निज्जूहियब्बेसिया।
१६ निशीथ उ० १०-३१८०-८१ कल्पसूत्र २३वीं समाचारी
१७ समणे भगवं महावीरे अन्तिमराइयंसि पणपन्नं अज्झयणाईं कल्लाण फल विवागाइं, पणपन्ने अज्झयणाइं पाव फल विवागाइं वागरित्ता सिद्धे जाव सव्व दुक्खप्पहीणे। —समवाय ५५, सूत्र ४, कल्पसूत्र, सूत्र १४६
१८ कल्पसूत्र, सूत्र १४६
१९ सिरि महावीर चरियं, पृ० ३३७
२० कल्पसूत्र १२३वां सूत्र
२१ कल्पसूत्र, सूत्र १२७ (गते से भावुज्जोये दव्युज्जोयं करिस्सामो)
२२ कल्पसूत्र, सूत्र १२४
२३ अमर भारती, महावीर परिनिर्वाण विशेषांक, पृ० ४५
२४ दिगम्बरदास जैन, वीर परिनिर्वाण, अमर भारती, आगरा।
२५ जं रयणि च णं समणे भगवं महावीरे काल गए जाव सव्व दुक्ख पहीणे तं रयणि च णं जेट्ठस्स गोयमस्स इंदभूइस्स ···केवलवरनाणदंसणे समुप्पन्ने। —कल्पसूत्र, १२७ सूत्र
२६ कल्प सुबोधिका टीका
२७ वही
२८ जैन व्रतकथा संग्रह, मोहनलाल जैन शास्त्री, जबलपुर।
२९ सभी पुस्तकों में कथा साम्य पाया गया
१ श्रीपाल चरित्र, मरुधर केशरी मिश्रीमल जी म० सा०
२ श्रीपाल चरित्र, काशीनाथ जैन, बम्बोरा
३ श्रीपाल चरित्र, जैन दिवाकर चौथमल जी म० सा०
४ पर्वकथा संचय, मुनि देवेन्द्रविजय।

□□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org